प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियाँ और समकालीन शिक्षा-विमर्श

प्रोफेसर गोपाल कृष्ण ठाकुर*

*अधिष्ठाता, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र
ईमेल: gkthakur11@gmail.com
DOI: doi.org/10.5281/zenodo.21077375
Accepted on: 25/09/2025 Published on: 10/10/2025

सारांश:

इक्कीसवीं शताब्दी में शिक्षा तीव्र बौद्धिक, तकनीकी एवं सामाजिक परिवर्तनों के दौर से गुजर रही है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता, वैश्वीकरण तथा ज्ञान के तीव्र विस्तार ने शिक्षा के उद्देश्य, स्वरूप और प्रक्रियाओं पर पुनर्विचार की आवश्यकता उत्पन्न की है। इसी संदर्भ में समग्र शिक्षा, अनुभवात्मक अधिगम, संवादात्मक शिक्षण तथा बहुविषयी शिक्षा जैसी अवधारणाएँ वैश्विक शिक्षा-विमर्श के केंद्र में पुनः स्थापित हुई हैं (यूनेस्को, 2021; भारत सरकार, 2020)। ऐसे परिदृश्य में प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियों का अध्ययन केवल ऐतिहासिक पुनर्स्मरण का विषय नहीं, बल्कि समकालीन शिक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण वैचारिक संसाधन के रूप में उभरता है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियों के आधारभूत सिद्धान्तों का विश्लेषण करते हुए उनकी समकालीन प्रासंगिकता एवं शैक्षिक निहितार्थों का पुनर्पाठ करना है। यह गुणात्मक, दस्तावेजीय एवं वैचारिक अध्ययन है, जिसमें वैदिक एवं उपनिषदिक साहित्य, भगवद्गीता, प्राचीन भारतीय विश्वविद्यालय-परम्परा तथा आधुनिक शिक्षा-दर्शन का व्याख्यात्मक एवं तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है। विश्लेषण के लिए समग्र शिक्षा, संवाद, अनुभवात्मक अधिगम, मूल्यपरक शिक्षा तथा बहुविषयी ज्ञान-दृष्टि को प्रमुख वैचारिक आधार बनाया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियों के अनेक सिद्धान्त समकालीन शिक्षा की प्रमुख अवधारणाओं के साथ सार्थक वैचारिक संवाद स्थापित करते हैं। उनका महत्व अतीत की पुनर्स्थापना में नहीं, बल्कि आधुनिक लोकतांत्रिक मूल्यों, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, सामाजिक न्याय तथा समावेशी शिक्षा के आलोक में उनके आलोचनात्मक पुनर्पाठ में निहित है। अध्ययन प्रतिपादित करता है कि प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियाँ आधुनिक शिक्षा के लिए पूर्वनिर्मित प्रतिमान प्रस्तुत नहीं करतीं, बल्कि अधिक समग्र, मानवीय, मूल्यपरक एवं जीवनोन्मुख शिक्षा-दृष्टि के निर्माण हेतु महत्त्वपूर्ण वैचारिक आधार उपलब्ध कराती हैं। इस प्रकार यह अध्ययन प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियों और समकालीन शिक्षा-विमर्श के मध्य एक सैद्धान्तिक सेतु स्थापित करते हुए भारतीय ज्ञान-परम्परा के आधार पर समकालीन शिक्षा के अधिक मानवीय एवं समग्र पुनर्संयोजन की संभावना को प्रतिपादित करता है।

प्रमुख शब्द: *प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियाँ, भारतीय ज्ञान-परम्परा, समग्र शिक्षा, संवादात्मक शिक्षण, अनुभवात्मक अधिगम, मूल्यपरक शिक्षा, बहुविषयी शिक्षा।*

प्रस्तावना:

इक्कीसवीं शताब्दी में शिक्षा अभूतपूर्व परिवर्तन के दौर से गुजर रही है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डिजिटल प्रौद्योगिकी, वैश्वीकरण, ज्ञान के तीव्र विस्तार तथा बदलती सामाजिक-आर्थिक संरचनाओं ने शिक्षा के उद्देश्य, स्वरूप और प्रक्रियाओं पर पुनर्विचार की आवश्यकता उत्पन्न की है। आज शिक्षा के समक्ष केवल दक्ष मानव संसाधन तैयार करने का प्रश्न नहीं है, बल्कि ऐसे व्यक्तित्व के निर्माण की चुनौती भी है जो आलोचनात्मक चिंतन, नैतिक विवेक, सामाजिक उत्तरदायित्व, सांस्कृतिक संवेदनशीलता तथा सतत् अधिगम की क्षमता से सम्पन्न हो। इसी कारण समकालीन शिक्षा-विमर्श में यह प्रश्न निरन्तर उभर रहा है कि क्या शिक्षा को केवल अधिगम-परिणामों अथवा कौशल-आधारित दक्षताओं तक सीमित किया जा सकता है, अथवा उसे मानवीय विकास की एक व्यापक प्रक्रिया के रूप में पुनर्परिभाषित करने की आवश्यकता है (यूनेस्को, 2021; बिएस्ता, 2020)। इन प्रश्नों की पृष्ठभूमि में वैश्विक शिक्षा-विमर्श में समग्र शिक्षा, अनुभवात्मक अधिगम, शिक्षार्थी-केंद्रित अधिगम, संवादात्मक शिक्षण, सामाजिक-भावनात्मक अधिगम तथा बहुविषयी शिक्षा जैसी अवधारणाओं का महत्व निरन्तर बढ़ा है (मिलर, 2007; कोल्ब, 1984)। राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 ने भी भारतीय शिक्षा के पुनर्गठन के लिए बहुविषयी दृष्टिकोण, भारतीय ज्ञान-परम्परा, मातृभाषा-आधारित अधिगम, मूल्य-आधारित शिक्षा तथा अनुभवात्मक शिक्षण को प्रमुख आधारों के रूप में स्वीकार किया है (भारत सरकार, 2020)। इससे स्पष्ट होता है कि समकालीन शिक्षा केवल ज्ञान के विस्तार का प्रश्न नहीं है, बल्कि शिक्षा के दार्शनिक आधारों के पुनर्विचार का भी विषय है।

ऐसे परिदृश्य में प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियों का पुनर्पाठ विशेष महत्त्व प्राप्त करता है। भारतीय शिक्षा-परम्परा में शिक्षा को केवल सूचना अथवा कौशल के अर्जन का माध्यम नहीं माना गया, बल्कि उसे व्यक्ति के बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक विकास की समन्वित प्रक्रिया के रूप में समझा गया। वैदिक साहित्य में *विद्या* को आत्मविकास का साधन माना गया है; उपनिषदों में संवाद, प्रश्न, जिज्ञासा तथा आत्मान्वेषण को ज्ञानार्जन की आधारभूत प्रक्रियाओं के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है; भगवद्गीता ज्ञान, कर्म और आत्मानुशासन के समन्वय पर बल देती है (बृहदारण्यक उपनिषद्, 2.4; तैत्तिरीयोपनिषद्, शिक्षावल्ली 1.11; भगवद्गीता, 4.38)। इसी प्रकार बौद्ध शिक्षा-परम्परा में विमर्श, तर्क, अनुभव तथा करुणा को शिक्षा के अभिन्न आयामों के रूप में विकसित किया गया (राधाकृष्णन, 1953)।

प्राचीन भारतीय शिक्षा का संस्थागत स्वरूप भी अत्यन्त विविध एवं विकसित था। गुरुकुल प्रणाली, तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, वल्लभी, काशी, मिथिला तथा कांचीपुरम् जैसे शिक्षाकेंद्र केवल धार्मिक अध्ययन तक सीमित नहीं थे, बल्कि दर्शन, व्याकरण, गणित, चिकित्सा, खगोल, तर्कशास्त्र, राजनीति, कला तथा भाषाओं के अध्ययन के प्रमुख केन्द्र थे (अल्तेकर, 1944; मुखर्जी, 1989)। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय शिक्षा-परम्परा में ज्ञान का संगठन मूलतः बहुविषयी, संवादपरक तथा जीवनोन्मुख था। यह दृष्टि आज के बहुविषयी शिक्षा-विमर्श के साथ सार्थक संवाद स्थापित करती प्रतीत होती है। फिर भी यह स्वीकार करना आवश्यक है कि प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियों का मूल्यांकन दो अतियों से मुक्त होकर किया जाना चाहिए। एक ओर औपनिवेशिक इतिहास-लेखन ने भारतीय शिक्षा को रूढ़, अवैज्ञानिक तथा स्थिर व्यवस्था के रूप में चित्रित किया, जबकि दूसरी ओर कुछ समकालीन लेखन में उसका ऐसा आदर्शीकरण किया गया है मानो वह आधुनिक शिक्षा का पूर्ण विकल्प प्रस्तुत करती हो। दोनों ही दृष्टिकोण भारतीय शिक्षा-परम्परा की ऐतिहासिक जटिलता, क्षेत्रीय विविधता तथा सामाजिक परिवर्तनशीलता का समुचित प्रतिनिधित्व नहीं करते (धर्मपाल, 1983; कुमार, 2021)। अतः आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय शिक्षण-पद्धतियों का अध्ययन न तो सांस्कृतिक गौरवगान के रूप में किया जाए और न ही औपनिवेशिक पूर्वधारणाओं के आलोक में उनका अवमूल्यन किया जाए; बल्कि उन्हें समकालीन शिक्षा-दर्शन के साथ एक आलोचनात्मक एवं रचनात्मक संवाद में समझा जाए।

यही इस अध्ययन का मूल बौद्धिक आधार है। प्रस्तुत शोध-पत्र प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियों का केवल ऐतिहासिक पुनरावलोकन प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि उनके आधारभूत सिद्धान्तों का समकालीन शिक्षा-विमर्श के संदर्भ में वैचारिक पुनर्निर्वचन करने का प्रयास करता है। अध्ययन का केंद्रीय प्रतिपादन यह है कि प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियों का महत्व उनके संस्थागत स्वरूप के पुनर्स्थापन में नहीं, बल्कि उनके शैक्षिक सिद्धान्तों - जैसे समग्रता, संवाद, अनुभव, आत्मानुशासन, मूल्यपरकता तथा बहुविषयी ज्ञान-दृष्टि - के समकालीन पुनर्पाठ में निहित है। आधुनिक लोकतांत्रिक मूल्यों, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, सामाजिक न्याय तथा समावेशी शिक्षा के आलोक में इन सिद्धान्तों का पुनर्संदर्भीकरण समकालीन शिक्षा को अधिक मानवीय, चिंतनशील तथा जीवनोन्मुख बनाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकता है। इसी उद्देश्य से प्रस्तुत अध्ययन प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियों और समकालीन शिक्षा-विमर्श के मध्य एक वैचारिक सेतु स्थापित करने का प्रयास करता है। यह अध्ययन इस धारणा का समर्थन नहीं करता कि अतीत को यथावत् वर्तमान में लागू किया जा सकता है; बल्कि यह प्रतिपादित करता है कि भारतीय ज्ञान-परम्परा में निहित शैक्षिक अवधारणाएँ समकालीन शिक्षा के पुनर्विचार एवं पुनर्संरचना के लिए महत्त्वपूर्ण वैचारिक संसाधन उपलब्ध कराती हैं। इसी दृष्टि से यह शोध-पत्र भारतीय शिक्षा-

दर्शन की ऐतिहासिक विरासत और वर्तमान वैश्विक शिक्षा-विमर्श के मध्य एक सार्थक बौद्धिक संवाद स्थापित करने का प्रयास है।

वैचारिक पृष्ठभूमि एवं अध्ययन का प्रतिपाद्य

समकालीन शिक्षा-विमर्श में यह व्यापक रूप से स्वीकार किया जा रहा है कि शिक्षा को केवल ज्ञान-संचरण अथवा कौशल-विकास की प्रक्रिया के रूप में समझना पर्याप्त नहीं है। तीव्र तकनीकी परिवर्तन, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, वैश्वीकरण, पर्यावरणीय संकट, लोकतांत्रिक चुनौतियाँ तथा मानवीय मूल्यों के क्षरण ने शिक्षा के उद्देश्यों पर पुनर्विचार की आवश्यकता उत्पन्न की है। यूनेस्को (2021) ने स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया है कि भविष्य की शिक्षा को केवल आर्थिक उत्पादकता का साधन न मानकर सामाजिक न्याय, मानव गरिमा, सह-अस्तित्व तथा सतत् विकास के व्यापक लक्ष्यों से जोड़ना आवश्यक है। इसी प्रकार बिएस्ता (2020) का मत है कि शिक्षा का उद्देश्य केवल अधिगम-परिणामों का अधिकतमकरण नहीं, बल्कि ऐसे उत्तरदायी एवं विवेकशील व्यक्तियों का निर्माण है जो लोकतांत्रिक समाज में सार्थक सहभागिता कर सकें। नुसबाम (2010) भी शिक्षा को लोकतांत्रिक नागरिकता, आलोचनात्मक चिंतन तथा मानवीय संवेदनशीलता के विकास का माध्यम मानती हैं।

इन्हीं कारणों से समकालीन शिक्षा-दर्शन में समग्र शिक्षा, अनुभवात्मक अधिगम, संवादात्मक शिक्षण, सामाजिक-भावनात्मक अधिगम तथा बहुविषयी शिक्षा जैसी अवधारणाओं का महत्व निरन्तर बढ़ा है (मिलर, 2007; कोल्ब, 1984; फ्रेरे, 1970)। राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 भी इसी व्यापक परिवर्तन का भारतीय रूप प्रस्तुत करती है, जिसमें भारतीय ज्ञान-परम्परा, अनुभवात्मक शिक्षण, बहुविषयी शिक्षा, नैतिक मूल्यों तथा समग्र व्यक्तित्व-विकास को उच्च शिक्षा सहित सम्पूर्ण शिक्षा-व्यवस्था के आधारभूत सिद्धान्तों के रूप में स्वीकार किया गया है (भारत सरकार, 2020)। इस व्यापक वैश्विक परिप्रेक्ष्य में प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियों का पुनर्पाठ विशेष महत्त्व प्राप्त करता है। किन्तु यह पुनर्पाठ केवल अतीत की संस्थागत व्यवस्थाओं का पुनर्निर्माण नहीं है। वस्तुतः किसी भी ऐतिहासिक शिक्षा-व्यवस्था का मूल्य उसके बाह्य स्वरूप में नहीं, बल्कि उन शैक्षिक सिद्धान्तों में निहित होता है जिन पर उसका निर्माण हुआ था। भारतीय शिक्षा-परम्परा का मूल आधार भी गुरुकुल, आश्रम अथवा विश्वविद्यालय जैसी संस्थागत संरचनाएँ मात्र नहीं थीं; बल्कि उनके पीछे विद्यमान ज्ञान-दृष्टि, मनुष्य-दृष्टि तथा जीवन-दृष्टि थी (राधाकृष्णन, 1953; अल्तेकर, 1944)।

भारतीय दार्शनिक परम्परा में *विद्या* का अर्थ केवल सूचना अथवा बौद्धिक दक्षता नहीं है। उपनिषदों में ज्ञान को आत्मान्वेषण, विवेक तथा सत्य-बोध की प्रक्रिया के रूप में निरूपित किया गया है (बृहदारण्यक उपनिषद्, 2.4; छान्दोग्य

उपनिषद्, 6.14)। तैत्तिरीयोपनिषद् में शिक्षा को सत्य, धर्म, स्वाध्याय और आचार से अभिन्न रूप में जोड़ा गया है (तैत्तिरीयोपनिषद्, शिक्षावल्ली, 1.11)। भगवद्गीता ज्ञान, कर्म और आत्मानुशासन के समन्वय पर बल देती है तथा ज्ञान को व्यक्ति के आन्तरिक रूपान्तरण का साधन मानती है (भगवद्गीता, 3.19; 4.38)। बौद्ध परम्परा में भी विमर्श, अनुभव, करुणा और प्रज्ञा के माध्यम से ज्ञान की प्राप्ति पर बल दिया गया है (राधाकृष्णन, 1953)। इन सभी स्रोतों में शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन नहीं, बल्कि व्यक्ति के समग्र विकास और उत्तरदायी सामाजिक जीवन का निर्माण है। यद्यपि प्राचीन भारतीय शिक्षा-परम्परा का ऐतिहासिक विकास अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित रहा और विभिन्न कालों में उसकी संरचना एवं उपलब्धता में उल्लेखनीय विविधताएँ भी विद्यमान थीं, तथापि उसके आधारभूत शैक्षिक सिद्धान्तों की समकालीन प्रासंगिकता से इनकार नहीं किया जा सकता। दूसरी ओर इन सिद्धान्तों को उनके ऐतिहासिक संदर्भों से पृथक करके सार्वकालिक एवं अपरिवर्तनीय सत्य के रूप में प्रस्तुत करना भी उचित नहीं होगा। अतः आवश्यकता एक संतुलित एवं आलोचनात्मक दृष्टिकोण की है, जिसमें न तो औपनिवेशिक पूर्वाग्रहों के कारण भारतीय शिक्षा-परम्परा का अवमूल्यन किया जाए और न ही सांस्कृतिक गौरवबोध के कारण उसका अनालोचनात्मक आदर्शीकरण किया जाए (धर्मपाल, 1983; कुमार, 2021)। इसी बिन्दु पर प्रस्तुत अध्ययन अपनी वैचारिक स्थिति स्पष्ट करता है। यह शोध-पत्र प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियों को आधुनिक शिक्षा का विकल्प नहीं मानता, बल्कि उन्हें समकालीन शिक्षा के लिए वैचारिक संसाधन के रूप में देखता है। अध्ययन का केंद्रीय प्रतिपादन यह है कि प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियों का वास्तविक महत्व उनके संस्थागत स्वरूप के पुनर्स्थापन में नहीं, बल्कि उनके आधारभूत सिद्धान्तों - समग्रता, संवाद, अनुभव, आत्मानुशासन, मूल्यपरकता, बहुविषयी ज्ञान-दृष्टि तथा शिक्षार्थी के समग्र विकास - के समकालीन पुनर्निर्वचन में निहित है। आधुनिक शिक्षा यदि इन सिद्धान्तों का लोकतांत्रिक मूल्यों, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, लैंगिक समानता, सामाजिक न्याय तथा समावेशी शिक्षा के साथ सृजनात्मक समन्वय स्थापित कर सके, तो शिक्षा को अधिक मानवीय, उत्तरदायी तथा जीवनोन्मुख बनाया जा सकता है।

अतः प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य अतीत का पुनरुत्थान नहीं, बल्कि वैचारिक पुनर्संयोजन है। यह अध्ययन प्रतिपादित करता है कि प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियाँ आधुनिक शिक्षा के लिए कोई पूर्वनिर्मित प्रतिमान प्रस्तुत नहीं करतीं, बल्कि ऐसे मूलभूत शैक्षिक सिद्धान्त उपलब्ध कराती हैं जिन्हें समकालीन संदर्भों में पुनर्परिभाषित, पुनर्संदर्भित और पुनर्संयोजित किया जा सकता है। इसी अर्थ में भारतीय ज्ञान-परम्परा और समकालीन शिक्षा-विमर्श के मध्य संवाद केवल अतीत और वर्तमान का संवाद नहीं, बल्कि शिक्षा के भविष्य के पुनर्निर्माण का भी संवाद है।

साहित्य समीक्षा एवं शोध-अंतराल

प्राचीन भारतीय शिक्षा-परम्परा पर उपलब्ध साहित्य का अवलोकन करने से स्पष्ट होता है कि इस क्षेत्र में हुए अध्ययन मुख्यतः चार प्रवृत्तियों में विभाजित किए जा सकते हैं - (i) ऐतिहासिक अध्ययन, (ii) दार्शनिक अध्ययन, (iii) समकालीन शिक्षा-दृष्टि से पुनर्व्याख्यात्मक अध्ययन तथा (iv) राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 और भारतीय ज्ञान-परम्परा के अंतर्संबंधों पर केन्द्रित अध्ययन। इन सभी ने भारतीय शिक्षा की समझ को समृद्ध किया है, किन्तु प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियों और समकालीन शिक्षा-विमर्श के मध्य एक समन्वित वैचारिक प्रतिमान विकसित करने का प्रयास अपेक्षाकृत सीमित दिखाई देता है।

ऐतिहासिक अध्ययनों में अल्तेकर (1944) ने प्राचीन भारतीय शिक्षा-व्यवस्था की संस्थागत संरचना, गुरुकुल-परम्परा, विश्वविद्यालयों तथा शिक्षा के उद्देश्यों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया। मुखर्जी (1989) ने ब्राह्मणीय तथा बौद्ध शिक्षा-परम्पराओं की तुलनात्मक समीक्षा करते हुए भारतीय शिक्षा की बहुआयामी प्रकृति को रेखांकित किया। शर्मा (2002) ने भारतीय शिक्षा के ऐतिहासिक विकास का क्रमबद्ध विश्लेषण प्रस्तुत किया, जबकि धर्मपाल (1983) ने औपनिवेशिक अभिलेखों के आधार पर यह प्रतिपादित किया कि औपनिवेशिक शासन से पूर्व भारत में शिक्षा का स्वरूप अपेक्षाकृत अधिक व्यापक एवं स्थानीय समाज से जुड़ा हुआ था। इन अध्ययनों का प्रमुख योगदान ऐतिहासिक तथ्यों एवं संस्थागत विकास के पुनर्निर्माण में है; तथापि इनमें समकालीन शिक्षाशास्त्रीय विमर्श के साथ गहन वैचारिक संवाद अपेक्षाकृत सीमित है।

दार्शनिक अध्ययनों में राधाकृष्णन (1953) ने उपनिषदों एवं भारतीय दर्शन के आलोक में शिक्षा को आत्मबोध, सत्य-अन्वेषण तथा नैतिक विकास की प्रक्रिया के रूप में व्याख्यायित किया। कृष्ण कुमार (2021) ने शिक्षा, ज्ञान और समाज के अंतर्संबंधों का विश्लेषण करते हुए यह प्रतिपादित किया कि शिक्षा का उद्देश्य केवल सूचना-संचरण नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना और मानवीय विवेक का विकास भी है। ये अध्ययन भारतीय शिक्षा-दर्शन के आधारभूत सिद्धान्तों को समझने में महत्त्वपूर्ण हैं, किन्तु शिक्षण-पद्धतियों के समकालीन पुनर्संदर्भीकरण की दिशा में अपेक्षित वैचारिक विस्तार अभी भी अपेक्षाकृत सीमित है।

दूसरी ओर आधुनिक शिक्षा-दर्शन में ड्यूई (1938), फ्रेरे (1970), कोल्ब (1984), मिलर (2007), नुसबाम (2010) तथा बिएस्ता (2020) ने अनुभव, संवाद, लोकतांत्रिक सहभागिता, समग्र विकास तथा मानवीय शिक्षा के विभिन्न आयामों को विकसित किया है। यद्यपि इन विद्वानों का कार्य भारतीय शिक्षा-परम्परा पर आधारित नहीं है, फिर भी इनके

द्वारा प्रतिपादित अनेक सिद्धान्त - विशेषतः अनुभवात्मक अधिगम, संवादात्मक शिक्षण, शिक्षार्थी की सक्रिय भूमिका तथा समग्र व्यक्तित्व-विकास - भारतीय शिक्षण-पद्धतियों के अनेक मूलभूत तत्त्वों के साथ वैचारिक साम्य स्थापित करते हैं। इससे यह संकेत मिलता है कि भारतीय तथा आधुनिक शिक्षा-दर्शन के मध्य तुलना के स्थान पर संवाद की सम्भावना अधिक सार्थक है।

हाल के वर्षों में राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के प्रकाशन के पश्चात भारतीय ज्ञान-परम्परा के शैक्षिक आयामों पर शोध में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। अनेक अध्ययनों ने भारतीय ज्ञान-प्रणाली, बहुविषयी शिक्षा, मूल्य-आधारित अधिगम तथा अनुभवात्मक शिक्षण को समकालीन शिक्षा-सुधारों से जोड़ने का प्रयास किया है (भारत सरकार, 2020; दत्ता एवं गीता, 2024; बैबर एवं जोहान्सडॉटिर, 2024)। इन अध्ययनों ने भारतीय ज्ञान-परम्परा की समकालीन प्रासंगिकता को रेखांकित अवश्य किया है, किन्तु अधिकांश अध्ययन नीति-स्तरीय अनुशंसाओं या सामान्य वैचारिक टिप्पणियों तक सीमित हैं। प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियों के आधारभूत सिद्धान्तों का व्यवस्थित विश्लेषण करते हुए समकालीन शिक्षा-विमर्श के लिए एक सुसंगत वैचारिक प्रतिमान प्रस्तुत करने के प्रयास अभी भी विरल हैं।

उपलब्ध साहित्य के समालोचनात्मक विश्लेषण से पाँच प्रमुख शोध-अंतराल उभरकर सामने आते हैं। प्रथम, अधिकांश अध्ययन ऐतिहासिक विवरणों पर केन्द्रित हैं, जबकि शिक्षण-पद्धतियों के आधारभूत सिद्धान्तों का वैचारिक विश्लेषण अपेक्षाकृत कम हुआ है। द्वितीय, भारतीय शिक्षण-पद्धतियों और समकालीन शिक्षा-दर्शन के मध्य व्यवस्थित तुलनात्मक एवं संश्लेषणात्मक अध्ययन सीमित हैं। तृतीय, राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के आलोक में प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियों की पुनर्व्याख्या अभी प्रारम्भिक अवस्था में है। चतुर्थ, उपलब्ध साहित्य में भारतीय शिक्षण-पद्धतियों के आधार पर किसी समग्र वैचारिक प्रतिमान का अभाव प्रतीत होता है। पंचम, उच्च शिक्षा, शिक्षक-शिक्षा तथा समकालीन शिक्षण-अधिगम प्रक्रियाओं के लिए इनके व्यावहारिक निहितार्थों पर अपेक्षाकृत कम चर्चा हुई है। इन्हीं शोध-अंतरालों की पृष्ठभूमि में प्रस्तुत अध्ययन प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियों का केवल ऐतिहासिक पुनरावलोकन नहीं करता, बल्कि उनके मूलभूत शैक्षिक सिद्धान्तों का समकालीन शिक्षा-विमर्श के संदर्भ में वैचारिक पुनर्निर्वचन प्रस्तुत करता है। अध्ययन का उद्देश्य भारतीय ज्ञान-परम्परा और आधुनिक शिक्षा-दर्शन के मध्य प्रतिस्पर्धा स्थापित करना नहीं, बल्कि उनके मध्य एक रचनात्मक एवं आलोचनात्मक संवाद विकसित करना है, जिससे समकालीन शिक्षा के लिए अधिक समग्र, मानवीय तथा मूल्यपरक वैचारिक आधार निर्मित किया जा सके।

शोध-पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन गुणात्मक, वैचारिक तथा व्याख्यात्मक शोध-परम्परा पर आधारित है। इसका उद्देश्य प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियों के आधारभूत शैक्षिक सिद्धान्तों का समकालीन शिक्षा-विमर्श के संदर्भ में दार्शनिक एवं वैचारिक पुनर्पाठ करना है, न कि किसी विशिष्ट शिक्षण-पद्धति की अनुभवजन्य प्रभावशीलता का परीक्षण। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए दस्तावेजीय विश्लेषण, व्याख्यात्मक विश्लेषण तथा तुलनात्मक वैचारिक विश्लेषण की प्रविधियों का उपयोग किया गया है (क्रेसवेल एवं पोथ, 2018)।

अध्ययन के लिए प्राथमिक स्रोतों के रूप में वैदिक एवं उपनिषदिक साहित्य, *भगवद्गीता* तथा प्राचीन भारतीय शिक्षा-संबंधी मूल ग्रंथों का, जबकि द्वितीयक स्रोतों के रूप में भारतीय शिक्षा-दर्शन, समग्र शिक्षा, अनुभवात्मक अधिगम, संवादात्मक शिक्षण, राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 तथा समकालीन शिक्षाशास्त्रीय साहित्य का उपयोग किया गया है (भारत सरकार, 2020; यूनेस्को, 2021)। उपलब्ध साहित्य का विश्लेषण समग्र शिक्षा, संवाद, अनुभवात्मक अधिगम, मूल्यपरक शिक्षा तथा बहुविषयी ज्ञान-दृष्टि जैसी प्रमुख वैचारिक श्रेणियों के आधार पर किया गया है। यह अध्ययन वैचारिक एवं दस्तावेजीय प्रकृति का है; अतः इसमें प्रत्यक्ष अनुभवजन्य आँकड़ों का संकलन नहीं किया गया है। प्रस्तुत निष्कर्षों का उद्देश्य सार्वभौमिक सामान्यीकरण करना नहीं, बल्कि प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियों और समकालीन शिक्षा-विमर्श के मध्य एक सुसंगत वैचारिक संवाद स्थापित करना तथा समकालीन शिक्षा के लिए एक समग्र शैक्षिक प्रतिमान का प्रस्ताव करना है।

प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियों के मूलभूत सिद्धान्त

प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियों का स्वरूप केवल विशिष्ट संस्थागत व्यवस्थाओं अथवा शिक्षण-प्रक्रियाओं तक सीमित नहीं था। उनका आधार एक व्यापक दार्शनिक दृष्टि थी, जिसमें ज्ञान, जीवन, समाज तथा नैतिकता को परस्पर संबद्ध माना गया। इस दृष्टि में शिक्षा का उद्देश्य केवल सूचना अथवा व्यावसायिक दक्षता का अर्जन नहीं, बल्कि व्यक्ति के बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक विकास के मध्य संतुलन स्थापित करना था (राधाकृष्णन, 1953; अल्तेकर, 1944)। उपलब्ध स्रोतों के तुलनात्मक अध्ययन से प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियों के कुछ ऐसे आधारभूत सिद्धान्त उभरकर सामने आते हैं जो आज भी समकालीन शिक्षा-विमर्श के साथ सार्थक वैचारिक संवाद स्थापित करते हैं।

समग्र शिक्षा

भारतीय शिक्षा-दर्शन में शिक्षा को मनुष्य के बहुआयामी विकास की प्रक्रिया माना गया है। उपनिषदों में *विद्या* का उद्देश्य आत्मबोध तथा व्यक्तित्व के आन्तरिक परिष्कार से जोड़ा गया है, जबकि तैत्तिरीयोपनिषद् शिक्षा को सत्य, धर्म, स्वाध्याय तथा आचार के समन्वित अभ्यास के रूप में प्रस्तुत करता है (तैत्तिरीयोपनिषद्, शिक्षावल्ली, 1.11)। इस दृष्टि में ज्ञान केवल बौद्धिक उपलब्धि नहीं, बल्कि जीवन के नैतिक एवं सामाजिक रूपान्तरण का माध्यम है। समकालीन शिक्षा-दर्शन में मिलर (2007) द्वारा प्रतिपादित समग्र शिक्षा (Holistic Education) भी इसी प्रकार शिक्षार्थी के बौद्धिक, भावनात्मक, सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक आयामों के संतुलित विकास पर बल देती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 भी समग्र व्यक्तित्व-विकास, नैतिक मूल्यों, रचनात्मकता तथा जीवन-कौशल को शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों में सम्मिलित करती है (भारत सरकार, 2020)।

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि प्राचीन भारतीय शिक्षा की समग्रता और समकालीन Holistic Education समान ऐतिहासिक अवधारणाएँ नहीं हैं। दोनों की सांस्कृतिक एवं दार्शनिक पृष्ठभूमियाँ भिन्न हैं। तथापि दोनों इस मूल सिद्धान्त पर सहमत प्रतीत होती हैं कि शिक्षा का उद्देश्य केवल संज्ञानात्मक उपलब्धि नहीं, बल्कि व्यक्ति का बहुआयामी विकास है। प्रस्तुत अध्ययन का प्रतिपादन है कि समग्र शिक्षा की समकालीन अवधारणा को भारतीय शिक्षण-दृष्टि के साथ संवाद में रखकर अधिक व्यापक मानवीय आधार प्रदान किया जा सकता है।

संवाद एवं प्रश्न-संस्कृति

प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियों की एक विशिष्ट विशेषता संवाद-आधारित ज्ञान-निर्माण थी। उपनिषदों में गुरु और शिष्य के मध्य प्रश्नोत्तर केवल सूचना-प्रदान का माध्यम नहीं, बल्कि सत्य की सामूहिक खोज की प्रक्रिया है। गार्गी–याज्ञवल्क्य, नचिकेता–यम तथा श्वेतकेतु–उद्दालक जैसे संवाद इस बात का संकेत देते हैं कि जिज्ञासा, तर्क और विचार-विमर्श शिक्षा की वैध प्रक्रियाएँ थीं (बृहदारण्यक उपनिषद्, 3.6; कठोपनिषद्, 1.1; छान्दोग्य उपनिषद्, 6.8–16)। आधुनिक शिक्षा-दर्शन में फ्रेरे (1970) ने संवादात्मक शिक्षा को दमनकारी शिक्षा-पद्धति के विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया तथा शिक्षार्थी को सक्रिय सह-निर्माता (Co-creator of Knowledge) माना। इसी प्रकार Inquiry-based Learning तथा Constructivist Learning भी ज्ञान को संवाद एवं अनुभव के माध्यम से निर्मित मानते हैं (पियाजे, 1972; वाइगोत्स्की, 1978)।

प्रस्तुत अध्ययन यह प्रतिपादित करता है कि भारतीय संवाद-परम्परा और आधुनिक संवादात्मक शिक्षाशास्त्र के मध्य ऐतिहासिक समानता स्थापित करना उचित नहीं होगा; तथापि दोनों के मध्य एक महत्त्वपूर्ण वैचारिक साम्य अवश्य

विद्यमान है - ज्ञान को निष्क्रिय ग्रहण की जाने वाली वस्तु न मानकर सक्रिय बौद्धिक सहभागिता की प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करना। यही सिद्धान्त आज के लोकतांत्रिक, आलोचनात्मक तथा शिक्षार्थी-केंद्रित शिक्षण के लिए विशेष रूप से प्रासंगिक है।

अनुभव, अभ्यास एवं जीवन-सापेक्ष अधिगम

प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियों में अधिगम को जीवन से पृथक बौद्धिक क्रिया के रूप में नहीं देखा गया। गुरुकुल व्यवस्था में शिक्षण का एक महत्त्वपूर्ण भाग दैनिक जीवन, श्रम, प्रकृति, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा व्यावहारिक अनुभवों से जुड़ा हुआ था। कृषि, आयुर्वेद, शिल्प, युद्धकला, खगोल-अवलोकन तथा सामाजिक दायित्वों के माध्यम से विद्यार्थियों में केवल विषयगत दक्षता ही नहीं, बल्कि निर्णय-क्षमता, आत्मनिर्भरता तथा उत्तरदायित्व-बोध का भी विकास किया जाता था (अल्तेकर, 1944; मुखर्जी, 1989)। आधुनिक शिक्षा-दर्शन में ड्यूई (1938) तथा कोल्ब (1984) ने अनुभव को अधिगम का मूल आधार माना है। उनके अनुसार ज्ञान निष्क्रिय ग्रहण की प्रक्रिया नहीं, बल्कि अनुभव, चिंतन, पुनर्विचार तथा पुनः प्रयोग की सतत् चक्रीय प्रक्रिया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 भी परियोजना-आधारित अधिगम, क्षेत्र-अध्ययन, इंटर्नशिप तथा अनुभवात्मक शिक्षण को शिक्षा की गुणवत्ता से जोड़ती है (भारत सरकार, 2020)।

प्रस्तुत अध्ययन का प्रतिपादन है कि प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियों का अनुभवात्मक स्वरूप आधुनिक Experiential Learning का ऐतिहासिक पूर्वरूप सिद्ध करने का प्रयास नहीं किया जाना चाहिए। तथापि दोनों परम्पराएँ इस मूल विचार पर सहमत हैं कि वास्तविक अधिगम जीवनानुभव, सक्रिय सहभागिता तथा चिंतन की प्रक्रिया से विकसित होता है। यही सिद्धान्त समकालीन उच्च शिक्षा को अधिक जीवन-सापेक्ष तथा अर्थपूर्ण बनाने में सहायक हो सकता है।

मूल्य, आचार एवं उत्तरदायी नागरिकता

भारतीय शिक्षा-दर्शन में ज्ञान और आचरण को परस्पर पृथक नहीं माना गया। तैत्तिरीयोपनिषद् में 'सत्यं वद, धर्मं चर' का उपदेश शिक्षा को नैतिक उत्तरदायित्व से जोड़ता है (तैत्तिरीयोपनिषद्, शिक्षावल्ली, 1.11)। भगवद्गीता में निष्काम कर्म, आत्मसंयम तथा लोकसंग्रह की अवधारणाएँ ज्ञान के सामाजिक आयाम को रेखांकित करती हैं (भगवद्गीता, 3.19; 3.20)। बौद्ध परम्परा में करुणा, प्रज्ञा तथा मध्यम मार्ग शिक्षा के नैतिक आधार माने गए हैं। समकालीन शिक्षा-विमर्श में भी मूल्य-आधारित शिक्षा, वैश्विक नागरिकता, सामाजिक-भावनात्मक अधिगम तथा लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व को शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों में सम्मिलित किया गया है (यूनेस्को, 2021; नुसबाम, 2010)। बिएस्ता (2020) का मत है कि शिक्षा का

उद्देश्य केवल दक्ष व्यक्तियों का निर्माण नहीं, बल्कि ऐसे उत्तरदायी नागरिकों का निर्माण भी है जो सार्वजनिक जीवन में नैतिक निर्णय लेने में सक्षम हों।

इस संदर्भ में प्रस्तुत अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि भारतीय शिक्षा-परम्परा की मूल्यपरकता का समकालीन पुनर्पाठ किसी धार्मिक या सांस्कृतिक आग्रह के रूप में नहीं, बल्कि सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों - सत्यनिष्ठा, उत्तरदायित्व, सह-अस्तित्व, करुणा तथा सामाजिक न्याय - के आलोक में किया जाना चाहिए। यही दृष्टिकोण भारतीय परम्परा को लोकतांत्रिक एवं बहुलतावादी शिक्षा-दर्शन से जोड़ता है।

गुरु-शिष्य सम्बन्ध से शिक्षकीय मार्गदर्शन तक

प्राचीन भारतीय शिक्षा में गुरु का स्थान केवल विषय-विशेषज्ञ का नहीं, बल्कि मार्गदर्शक, प्रेरक तथा व्यक्तित्व-निर्माता का था। शिक्षा का संबंध दीर्घकालिक संवाद, विश्वास तथा नैतिक उत्तरदायित्व से जुड़ा हुआ था। गुरु–शिष्य सम्बन्ध का मूल आधार व्यक्तिगत मार्गदर्शन, आत्मानुशासन तथा सतत् अधिगम था (अल्तेकर, 1944; राधाकृष्णन, 1953)। समकालीन उच्च शिक्षा का संस्थागत स्वरूप प्राचीन गुरुकुल से मूलतः भिन्न है। बड़े विश्वविद्यालय, विविध शिक्षार्थी-समूह तथा डिजिटल शिक्षण-पद्धतियाँ उसी व्यवस्था का पुनरुत्पादन संभव नहीं बनातीं। तथापि आधुनिक शिक्षा में मेंटरिंग, अकादमिक परामर्श, शोध-निर्देशन तथा शिक्षार्थी-केंद्रित मार्गदर्शन जैसी अवधारणाएँ यह संकेत देती हैं कि शिक्षा में शिक्षक की भूमिका केवल ज्ञान-प्रदाता तक सीमित नहीं रह सकती।

अतः प्रस्तुत अध्ययन का प्रतिपादन है कि गुरु–शिष्य परम्परा का समकालीन महत्व उसकी संस्थागत पुनरावृत्ति में नहीं, बल्कि शिक्षकीय उत्तरदायित्व, व्यक्तिगत मार्गदर्शन, शैक्षणिक नैतिकता तथा शिक्षार्थी के समग्र विकास के प्रति प्रतिबद्धता में निहित है। यही दृष्टिकोण शिक्षक को सूचना-स्रोत से आगे बढ़ाकर अधिगम का सहायक, मार्गदर्शक तथा बौद्धिक सहयात्री के रूप में पुनर्परिभाषित करता है।

बहुविषयी ज्ञान-दृष्टि और समकालीन उच्च शिक्षा

प्राचीन भारतीय विश्वविद्यालयों - विशेषतः तक्षशिला, नालंदा एवं विक्रमशिला - में ज्ञान को पृथक-पृथक विषयों में सीमित करने के स्थान पर व्यापक बौद्धिक परम्परा के रूप में विकसित किया गया। दर्शन, व्याकरण, चिकित्सा, गणित, खगोल, राजनीति, कला तथा भाषाओं का अध्ययन परस्पर संबद्ध रूप में किया जाता था (मुखर्जी, 1989; शर्मा, 2002)। इससे स्पष्ट होता है कि ज्ञान का संगठन मूलतः अंतर्विषयी एवं संवादपरक था। समकालीन शिक्षा-विमर्श में बहुविषयी शिक्षा

को जटिल सामाजिक, वैज्ञानिक तथा मानवीय समस्याओं के समाधान हेतु आवश्यक माना जा रहा है (यूनेस्को, 2021)। राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 भी कठोर विषयगत विभाजनों को कम करते हुए बहुविषयी विश्वविद्यालयों एवं लचीली पाठ्यचर्या का समर्थन करती है (भारत सरकार, 2020)।

इस अध्ययन का निष्कर्ष है कि प्राचीन भारतीय शिक्षा-परम्परा का महत्त्व इस तथ्य में नहीं है कि वह आधुनिक बहुविषयी विश्वविद्यालयों का प्रत्यक्ष ऐतिहासिक पूर्वज थी, बल्कि इस बात में है कि उसने ज्ञान को मूलतः एक समग्र एवं अंतर्संबद्ध प्रक्रिया के रूप में देखा। समकालीन उच्च शिक्षा यदि इस दृष्टि को वैज्ञानिक अनुसंधान, नवाचार, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा वैश्विक नागरिकता के साथ समन्वित कर सके, तो बहुविषयी शिक्षा को अधिक सुदृढ़ वैचारिक आधार प्राप्त हो सकता है।

समकालीन शिक्षा-विमर्श के साथ वैचारिक संवाद

प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियों और समकालीन शिक्षा-विमर्श के मध्य संबंध को केवल ऐतिहासिक प्रभाव अथवा प्रत्यक्ष निरन्तरता के रूप में समझना न तो ऐतिहासिक दृष्टि से उचित है और न ही शिक्षाशास्त्रीय दृष्टि से पर्याप्त। दोनों भिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक तथा दार्शनिक संदर्भों में विकसित हुए हैं। तथापि उपलब्ध साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षा के अनेक आधारभूत प्रश्न - जैसे शिक्षा का उद्देश्य, ज्ञान की प्रकृति, शिक्षार्थी की भूमिका, शिक्षक का उत्तरदायित्व, अनुभव का महत्व तथा नैतिक विकास - दोनों परम्पराओं में केंद्रीय स्थान रखते हैं। अतः इन दोनों के मध्य संबंध को प्रभाव के बजाय संवाद के रूप में समझना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। प्राचीन भारतीय शिक्षा-दर्शन में ज्ञान को व्यक्ति के समग्र विकास, आत्मबोध तथा सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ा गया है। इसके विपरीत आधुनिक शिक्षा-दर्शन मुख्यतः लोकतांत्रिक समाज, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानवाधिकार तथा आलोचनात्मक चिंतन की पृष्ठभूमि में विकसित हुआ है। यद्यपि दोनों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमियाँ भिन्न हैं, फिर भी समग्र विकास, अनुभवाधारित अधिगम, संवादात्मक शिक्षण, बहुविषयी ज्ञान-दृष्टि तथा मूल्यपरक शिक्षा जैसे अनेक सिद्धान्तों के स्तर पर इनके मध्य उल्लेखनीय वैचारिक साम्य दिखाई देता है (ड्यूई, 1938; फ्रेरे, 1970; मिलर, 2007; बिएस्ता, 2020)।

उदाहरणार्थ, उपनिषदों की प्रश्न-संस्कृति तथा फ्रेरे की संवादात्मक शिक्षा दोनों ही शिक्षार्थी को निष्क्रिय ग्रहणकर्ता के स्थान पर सक्रिय सहभागिता करने वाला ज्ञान-निर्माता मानती हैं (फ्रेरे, 1970; बृहदारण्यक उपनिषद्, 3.6)। इसी प्रकार कोल्ब (1984) का अनुभवात्मक अधिगम तथा भारतीय शिक्षण-परम्परा में जीवन एवं अनुभव से जुड़े अधिगम के अनेक रूप इस तथ्य को रेखांकित करते हैं कि वास्तविक ज्ञान केवल सैद्धान्तिक सूचना से नहीं, बल्कि अनुभव, चिंतन और

व्यवहार के समन्वय से विकसित होता है। मिलर (2007) द्वारा प्रतिपादित समग्र शिक्षा तथा भारतीय शिक्षा-दर्शन में व्यक्तित्व के बहुआयामी विकास की अवधारणा भी इसी प्रकार के वैचारिक संवाद की ओर संकेत करती है। तथापि इन समानताओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना उचित नहीं होगा कि आधुनिक शिक्षा-दर्शन के सभी सिद्धान्त प्राचीन भारतीय शिक्षा से प्रत्यक्ष रूप से उत्पन्न हुए हैं या भारतीय शिक्षा-परम्परा आधुनिक शिक्षा की सभी चुनौतियों का पूर्वनिर्मित समाधान प्रस्तुत करती है। ऐसा निष्कर्ष न तो ऐतिहासिक रूप से प्रमाणित है और न ही अकादमिक दृष्टि से स्वीकार्य। प्रस्तुत अध्ययन इस प्रकार के रैखिक या गौरवगाथात्मक दृष्टिकोण का समर्थन नहीं करता। इसके स्थान पर यह प्रतिपादित करता है कि प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियाँ समकालीन शिक्षा के लिए एक **वैचारिक संसाधन** हैं, जिनके आधार पर शिक्षा के मानवीय, नैतिक तथा समग्र आयामों का पुनर्विचार किया जा सकता है।

इसी दृष्टि से यह अध्ययन 'वैचारिक पुनर्संयोजन' की संकल्पना प्रस्तुत करता है। इसका आशय यह है कि प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियों के आधारभूत सिद्धान्तों को उनके ऐतिहासिक संदर्भों सहित समझते हुए उन्हें आधुनिक लोकतांत्रिक मूल्यों, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, लैंगिक समानता, सामाजिक न्याय तथा समावेशी शिक्षा के साथ पुनर्संदर्भित किया जाए। इस प्रकार भारतीय ज्ञान-परम्परा अतीत की पुनरावृत्ति का नहीं, बल्कि भविष्य की शिक्षा के पुनर्निर्माण का एक सृजनात्मक वैचारिक स्रोत बन सकती है।

तालिका 1: प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियों एवं समकालीन शिक्षा-विमर्श के मध्य वैचारिक संवाद का तुलनात्मक प्रतिरूप

प्राचीन भारतीय शिक्षण सिद्धान्त	समकालीन शिक्षा-विमर्श में अनुरूप अवधारणा	प्रमुख संदर्भ
समग्र व्यक्तित्व-विकास	Holistic Education	Miller (2007)
प्रश्न एवं संवाद	Dialogic Pedagogy	Freire (1970)
अनुभव एवं अभ्यास	Experiential Learning	Dewey (1938); Kolb (1984)
स्वाध्याय एवं आत्मानुशासन	Self-directed Learning	Biesta (2020)
गुरु–शिष्य सम्बन्ध	Academic Mentoring	Nussbaum (2010)
बहुविषयी ज्ञान	Multidisciplinary Education	NEP–2020; UNESCO (2021)

स्रोत: लेखक द्वारा निर्मित

तालिका 1 से स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियों और समकालीन शिक्षा-विमर्श के मध्य प्रत्यक्ष ऐतिहासिक निरन्तरता का दावा करना उचित नहीं होगा, तथापि शिक्षा के अनेक मूलभूत सिद्धान्त—जैसे समग्र विकास, संवाद, अनुभव, शिक्षकीय मार्गदर्शन और बहुविषयी ज्ञान-दृष्टि - दोनों परम्पराओं में वैचारिक साम्य के रूप में उपस्थित हैं।

प्रस्तुत अध्ययन इसी वैचारिक साम्य को आधार बनाकर भारतीय शिक्षण-पद्धतियों का समकालीन पुनर्निर्वचन प्रस्तावित करता है।

समकालीन शिक्षा हेतु प्रस्तावित भारतीय समग्र शिक्षण प्रतिमान

उपलब्ध साहित्य, भारतीय दार्शनिक स्रोतों तथा समकालीन शिक्षा-दर्शन के तुलनात्मक विश्लेषण के आधार पर प्रस्तुत अध्ययन एक वैचारिक रूपरेखा प्रस्तावित करता है, जिसे **"भारतीय समग्र शिक्षण प्रतिमान"** कहा जा सकता है। इस प्रतिमान का आधार यह है कि शिक्षा को केवल ज्ञान-संचरण अथवा कौशल-विकास की प्रक्रिया के रूप में न देखकर व्यक्ति, समाज तथा ज्ञान के मध्य एक सतत् संवाद के रूप में समझा जाए। इस प्रतिमान में छह परस्पर संबद्ध आयाम सम्मिलित हैं -

1. **समग्रता (Holistic Development):** शिक्षा का उद्देश्य शिक्षार्थी के बौद्धिक, भावनात्मक, नैतिक, सामाजिक तथा आत्मिक विकास के मध्य संतुलन स्थापित करना है।
2. **संवाद (Dialogic Learning):** ज्ञान का निर्माण प्रश्न, तर्क, विमर्श तथा सह-अधिगम की प्रक्रिया से होता है; शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों ज्ञान-निर्माण के सहभागी होते हैं।
3. **अनुभव (Experiential Engagement):** वास्तविक अधिगम जीवनानुभव, अभ्यास, सामाजिक सहभागिता तथा चिंतन के माध्यम से विकसित होता है।
4. **मूल्य एवं उत्तरदायित्व (Ethics and Responsibility):** शिक्षा का उद्देश्य केवल दक्षता नहीं, बल्कि उत्तरदायी, संवेदनशील एवं लोकतांत्रिक नागरिकता का विकास भी है।
5. **मार्गदर्शी शिक्षकीय भूमिका (Mentorship):** शिक्षक सूचना-स्रोत मात्र नहीं, बल्कि अधिगम का प्रेरक, मार्गदर्शक तथा बौद्धिक सहयात्री है।
6. **बहुविषयी ज्ञान-दृष्टि (Multidisciplinary Knowledge):** ज्ञान मूलतः अंतर्संबद्ध है; जटिल सामाजिक एवं मानवीय समस्याओं के समाधान के लिए बहुविषयी दृष्टिकोण आवश्यक है।

इन छह आयामों के समन्वय से शिक्षा का ऐसा प्रतिमान विकसित होता है जो भारतीय ज्ञान-परम्परा की वैचारिक अंतर्दृष्टियों को समकालीन शिक्षा-विमर्श की आवश्यकताओं के साथ जोड़ता है। प्रस्तुत अध्ययन का प्रतिपादन है कि यही प्रतिमान राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 की भावना, समग्र शिक्षा, अनुभवात्मक अधिगम तथा मानवीय शिक्षा के उद्देश्यों को

अधिक सुदृढ़ दार्शनिक आधार प्रदान कर सकता है। इस प्रकार भारतीय समग्र शिक्षण प्रतिमान अतीत की पुनरावृत्ति नहीं, बल्कि भविष्य की शिक्षा के लिए एक वैचारिक प्रस्ताव के रूप में देखा जाना चाहिए।

शैक्षिक निहितार्थ

प्रस्तुत अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष समकालीन शिक्षा-विमर्श, शिक्षक-शिक्षा, उच्च शिक्षा तथा शैक्षिक नीति-निर्माण के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण निहितार्थ प्रस्तुत करते हैं। **प्रथम**, शिक्षा को केवल अधिगम-परिणामों अथवा व्यावसायिक दक्षताओं तक सीमित करने के स्थान पर समग्र व्यक्तित्व-विकास की प्रक्रिया के रूप में पुनर्परिभाषित करने की आवश्यकता है। भारतीय शिक्षण-पद्धतियों की समग्र दृष्टि समकालीन शिक्षा में बौद्धिक, नैतिक, भावनात्मक तथा सामाजिक विकास के संतुलित समावेशन की दिशा में उपयोगी वैचारिक आधार प्रदान कर सकती है। **द्वितीय,** शिक्षक की भूमिका का पुनर्परिभाषण आवश्यक है। प्राचीन भारतीय परम्परा में शिक्षक का दायित्व केवल ज्ञान-संचरण तक सीमित नहीं था, बल्कि वह मार्गदर्शक, प्रेरक एवं व्यक्तित्व-निर्माता भी था। आधुनिक उच्च शिक्षा में मेंटरिंग, अकादमिक परामर्श तथा शोध-निर्देशन जैसी व्यवस्थाओं को अधिक प्रभावी बनाकर इस मूल भावना को समकालीन संदर्भों में पुनर्संदर्भित किया जा सकता है। **तृतीय,** शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में संवाद, अनुभव तथा चिंतन को अधिक महत्त्व दिया जाना चाहिए। परियोजना-आधारित अधिगम, क्षेत्र-अध्ययन, समस्या-समाधान, सामुदायिक सहभागिता तथा चिंतनपरक अधिगम जैसी रणनीतियाँ भारतीय शिक्षण-दृष्टि और समकालीन शिक्षाशास्त्र के मध्य एक व्यावहारिक सेतु का कार्य कर सकती हैं। **चतुर्थ,** राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 द्वारा प्रतिपादित बहुविषयी शिक्षा, भारतीय ज्ञान-परम्परा, मूल्य-आधारित शिक्षा तथा अनुभवात्मक अधिगम को केवल पाठ्यक्रमीय प्रावधानों तक सीमित न रखकर उनके दार्शनिक आधारों को भी शिक्षक-शिक्षा एवं विश्वविद्यालयी पाठ्यचर्या में समुचित स्थान दिया जाना चाहिए। अंततः प्रस्तुत अध्ययन यह संकेत करता है कि प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियों का महत्त्व उनके ऐतिहासिक पुनरुत्पादन में नहीं, बल्कि समकालीन शिक्षा के मानवीय, लोकतांत्रिक तथा समावेशी पुनर्निर्माण के लिए उपलब्ध वैचारिक संसाधनों के रूप में है। यही दृष्टिकोण भारतीय ज्ञान-परम्परा को भविष्य उन्मुख शिक्षा-विमर्श से सार्थक रूप से जोड़ सकता है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियों का केवल ऐतिहासिक पुनरावलोकन करना नहीं, बल्कि उनके आधारभूत शैक्षिक सिद्धान्तों का समकालीन शिक्षा-विमर्श के संदर्भ में पुनर्निर्वचन करना था। उपलब्ध साहित्य, भारतीय दार्शनिक स्रोतों तथा आधुनिक शिक्षा-दर्शन के तुलनात्मक विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय

शिक्षण-पद्धतियों में समग्र विकास, संवाद, अनुभव, मूल्यपरकता, शिक्षकीय मार्गदर्शन तथा बहुविषयी ज्ञान-दृष्टि जैसे सिद्धान्त निहित हैं, जो आज भी शिक्षा के अनेक मूलभूत प्रश्नों के संदर्भ में प्रासंगिक बने हुए हैं। अध्ययन यह प्रतिपादित करता है कि प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियों का समकालीन महत्त्व उनकी संस्थागत संरचनाओं के पुनर्स्थापन में नहीं, बल्कि उनके आधारभूत शैक्षिक सिद्धान्तों के आलोचनात्मक पुनर्पाठ में निहित है। अतः भारतीय ज्ञान-परम्परा को न तो अतीत के गौरवगान के रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए और न ही आधुनिक शिक्षा के विकल्प के रूप में; बल्कि उसे समकालीन शिक्षा के मानवीय, लोकतांत्रिक तथा समावेशी पुनर्निर्माण के लिए एक महत्त्वपूर्ण वैचारिक संसाधन के रूप में देखा जाना चाहिए।

इसी परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत अध्ययन **'भारतीय समग्र शिक्षण प्रतिमान'** का प्रस्ताव करता है, जो समग्र विकास, संवादात्मक अधिगम, अनुभव, मूल्य, शिक्षकीय मार्गदर्शन तथा बहुविषयी ज्ञान-दृष्टि को एक समन्वित वैचारिक संरचना में व्यवस्थित करता है। यह प्रतिमान अतीत की पुनरावृत्ति का नहीं, बल्कि समकालीन शिक्षा-विमर्श के लिए एक वैचारिक पुनर्संयोजन का प्रस्ताव है। यद्यपि यह अध्ययन वैचारिक एवं दस्तावेजीय प्रकृति का है और इसके निष्कर्ष अनुभवजन्य सामान्यीकरण का दावा नहीं करते, तथापि यह भविष्य के अनुसंधानों के लिए एक सुदृढ़ सैद्धान्तिक आधार उपलब्ध कराता है। विशेषतः शिक्षक-शिक्षा, विश्वविद्यालयी पाठ्यचर्या, भारतीय ज्ञान-परम्परा, राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 तथा कृत्रिम बुद्धिमत्ता के युग में मानवीय शिक्षा के पुनर्विमर्श के संदर्भ में इस प्रतिमान का अनुभवजन्य परीक्षण एवं विस्तार किया जा सकता है। इसी अर्थ में प्रस्तुत अध्ययन प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धतियों और समकालीन शिक्षा-विमर्श के मध्य एक रचनात्मक, आलोचनात्मक एवं भविष्य उन्मुख वैचारिक संवाद स्थापित करने का प्रयास है।

संदर्भ:

1. अल्तेकर, ए. एस. (1944). *एजुकेशन इन एन्शिएन्ट इंडिया*. वाराणसी: नन्द किशोर एंड ब्रदर्स.
2. कृष्ण कुमार. (1992). *व्हाट इज़ वर्थ टीचिंग?* नई दिल्ली: ओरिएंट लॉन्गमैन.
3. कोल्ब, डी. ए. (1984). *एक्सपीरिएन्शियल लर्निंग: एक्सपीरियन्स ऐज़ द सोर्स ऑफ लर्निंग एंड डेवलपमेंट*. एंगलवुड क्लिफ्स, एनजे: प्रेन्टिस-हॉल.
4. ड्यूई, जे. (1938). *एक्सपीरियन्स एंड एजुकेशन*. न्यूयॉर्क: मैकमिलन.
5. धर्मपाल. (1983). द *ब्यूटीफुल ट्री: इंडिजिनस इंडियन एजुकेशन इन द एटीनथ सेंचुरी*. नई दिल्ली: बिब्लिया इमपेक्स.

6. नुसबाम, एम. सी. (2010). *नॉट फॉर प्रॉफिट: व्हाय डेमोक्रेसी नीड्स द ह्यूमैनिटीज*. प्रिन्सटन, एनजे: प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रेस.
7. फ्रेरे, पी. (1970). *पेडागॉजी ऑफ द ओप्रेस्ट*. न्यूयॉर्क: कॉन्टिन्यूम.
8. बिएस्ता, जी. (2020). *रिस्किंग अवर एजुकेशन: क्वालिफिकेशन, सोशलाइजेशन एंड सब्जेक्टिफिकेशन*. बोल्डर, सीओ: पैराडाइम पब्लिशर्स.
9. भारत सरकार. (2020). *राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020*. नई दिल्ली: शिक्षा मंत्रालय.
10. मिलर, आर. (2007). *व्हाट आर स्कूल्स फॉर? होलिस्टिक एजुकेशन इन अमेरिकन कल्चर* (तृतीय संस्करण). ब्रैंडन, वीटी: होलिस्टिक एजुकेशन प्रेस.
11. मुखर्जी, राधाकुमुद. (1951). *एन्शिएन्ट इंडियन एजुकेशन: ब्राह्मणिकल एंड बुद्धिस्ट*. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास.
12. यूनेस्को. (2021). *रीइमैजिनिंग आवर फ्यूचर्स टुगेदर: ए न्यू सोशल कॉन्ट्रैक्ट फॉर एजुकेशन*. पेरिस: यूनेस्को.
13. राधाकृष्णन, एस. (1953). *इंडियन फिलॉसफी* (खंड 1). लंदन: जॉर्ज एलन एंड अनविन.
14. राधाकृष्णन, एस. (1953). द *हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ*. लंदन: जॉर्ज एलन एंड अनविन.

प्राथमिक संस्कृत स्रोत:

15. श्रीमद्भगवद्गीता. (2021). गोरखपुर: गीता प्रेस.
16. तैत्तिरीयोपनिषद्. (2022). गोरखपुर: गीता प्रेस.
17. बृहदारण्यकोपनिषद्. (2022). गोरखपुर: गीता प्रेस.
18. छान्दोग्योपनिषद्. (2022). गोरखपुर: गीता प्रेस.